2 अप्रैल 2009, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-61 / 2009-11

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

यह भव, भव का अभाव करने के लिये है, किसी पक्ष या सम्प्रदाय के पोषण के लिये नहीं।

ह्न आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-39

वर्ष : 32, अंक : 1 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये
अप्रैल (प्रथम), 2009 प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

अष्टान्हिका महापर्व सम्पन्न

1. अशोकनगर (म.प्र.) : यहाँ अष्टान्हिका महापर्व के अवसर पर दिनांक 4 मार्च से 13 मार्च 09 तक श्री पंचमेरु नन्दीश्वर महामण्डल विधान का भव्य आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित रजनीकान्त मीठालालजी दोशी हिम्मतनगर के प्रतिदिन प्रात: समयसार के कर्त्ता-कर्म अधिकार पर , दोपहर में प्रवचनसार केशुद्धोपयोग अधिकार पर तथा रात्रि में मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवें अधिकार से व्यवहाराभासी मिथ्यादृष्टि की भूल पर अत्यंत सरल और मार्मिक व्याख्यान हुये।

विधि-विधान के समस्त कार्य उज्जैन से पधारे श्री दिनेशकुमारजी कासलीवाल एवं उनके सहयोगी श्री अशोकजी जैन ने सम्पन्न कराये।

इस महापर्व के समापन के अवसर पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचन का नियमित दैनिक प्रसारण नवीन व आधुनिक ध्वनि उपकरणों के साथ प्रारम्भ किया गया। जिसका उद्घाटन समागत विद्वान एवं ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री अमोलकचंदजी ने किया।

2. झाँसी (उ.प्र.) : यहाँ अष्टान्हिका महापर्व के पावन प्रसंग पर पण्डित सुरेशचंदजी शास्त्री (पिपरा वालों) के नियमसार एवं मोक्षशास्त्र पर तीनों समय मांगलिक व्याख्यान हुये। आपके व्याख्यानों का लाभ समस्त मुमुक्षु समाज ने प्राप्त किया।

श्री महावीर बाल शिक्षा संस्कार केन्द्र हाईस्कूल में बालकों के लिये पण्डितजी का नैतिकता एवं धर्म के स्वरूप पर विशेष प्रवचन हुआ।

ब्र. यशपालजी जैन द्वारा धर्म प्रभावना

मंगलायतन (उ.प्र.) : यहाँ दिनांक 25 फरवरी से 12 मार्च 2009 तक मंगलायतन के कक्षा 9 से 12 वीं के विद्यार्थियों, स्थानीय अनेक जिज्ञासु श्रावकों व अष्टाह्निका पर्व में आये साधर्मियों ने ब्र. यशपालजी जैन, जयपुर के करणानुयोग विषय का लाभ प्राप्त किया। आपके द्वारा प्रात: **गुणस्थान समझने के लिए आवश्यक प्रश्नोत्तर विभाग** और सायं **गुणस्थान** विषय पर कक्षायें ली गई। विद्यार्थियों की परीक्षा का समय होते हुये भी उन्होंने अति उत्साह से विषय को ग्रहण किया। ह्न **अशोक लुहाडिया**

26 वीं अखिल भारतीय जैन विद्या संगोष्ठी सम्पन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ जैन अनुशीलन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर एवं त्रिलोक उच्चस्तरीय अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान कोटा के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 22 से 24 मार्च, 09 तक श्री भट्टारकजी की नसियाँ में 26 वीं अखिल भारतीय जैन विद्या संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

संगोष्ठी का मुख्य विषय **भारतीय परम्परा में ध्यान एवं योग** था।

दिनांक 22 मार्च को प्रात: संगोष्ठी की अध्यक्षता राजस्थान विश्व विद्यालय के कुलपति श्री एन.के जैन ने की। मुख्यवक्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने जैनदर्शन के आलोक में ध्यान की बहुत सुन्दर तार्किक मीमांसा की। मुख्यअतिथि के रूप में राजस्थान पत्रिका के सम्पादक श्री गुलाब कोठारी, विशिष्ट अतिथि के रूप में डॉ. टी. सी. कोठारी मंचासीन थे।

संगोष्ठी के निदेशक डॉ. पी. सी. जैन ने समागत अतिथियों का परिचय दिया तथा श्री राजकुमारजी काला ने सभी का हार्दिक अभिनन्दन एवं स्वागत किया।

त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के सात सत्रों में निम्नलिखित विद्वानों का लाभ प्राप्त हुआ ह्न

पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल जयपुर, डॉ. राजारामजी जैन आरा, डॉ. उदयचंदजी जैन उदयपुर, डॉ. पी.सी. जैन जयपुर, प्रो. लालचंदजी जैन, डॉ. प्रेमचंदजी रांवका, डॉ. बीना अग्रवाल, डॉ. अशोक जैन, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, श्री धीरजजी जैन जोधपुर, डॉ. मंजूजी जैन, वैद्य प्रभुदयालजी कासलीवाल, श्री अखिलजी बंसल जयपुर, डॉ. राजकुमारी जैन अजमेर, डॉ. कल्पनाजी जैन नई दिल्ली, डॉ. महिमाजी वासल अलवर, डॉ. निर्मलाजी गोदिका उदयपुर, डॉ. नन्दिता सिंघवी बीकानेर, कु. सीमा जैन, डॉ. बी. एल. सेठी झुंझुनूं, श्री ताराचंदजी पाटनी, डॉ. शिवसागर त्रिपाठी, श्रीमती अंजना जैन, कु. शीला जैन, कु. एकता परनामी आदि 71 विद्वानों ने अपने वक्तव्य के माध्यम से ध्यान एवं योग के विविध पहलुओं को सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया।

संगोष्ठी में समागत सभी विद्वानों को पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की ओर से डॉ. भारिल्ल की नवीनतम कृति **ध्यान का स्वरूप** एवं **प्रवचनसार की ज्ञान-ज्ञेय प्रबोधिनी टीका** भेंटकर सम्मानित किया गया। ●

सम्पादकीय - 25

चलते-फिरते सिद्धों से गुरु

ह्न पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

आचार्य श्री ने मुनिधर्म के उत्तर गुणों में १२ तपों की चर्चा करते हुए कहा ह्न मुनिधर्म के उत्तरगुणों में बारहतपों का महत्वपूर्ण स्थान है; और इच्छाओं के निरोध का नाम तप है। धवल ग्रन्थ पुस्तक १३ पृष्ठ ५४-५५ में आया है ह्न '**इच्छा निरोधस्तपः**' इच्छाओं के निरोध का नाम तप है तथा तत्त्वार्थसूत्र में कहा है ह्न '**तपसा निर्जरा च।**' अर्थात् तप से निर्जरा होती है। अन्य आचार्यों ने भी इसका समर्थन किया है, जिसकी चर्चा इसी अध्याय में यथास्थान है।

पण्डित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक अध्याय ३ पृष्ठ ७० पर जो चार प्रकार की इच्छाओं का प्रतिपादन किया है, उसका संक्षिप्त सार यह है कि ह्न दुख का लक्षण आकुलता है और आकुलता इच्छा होने पर होती है। वह इच्छा चार प्रकार की है।

पहली इच्छा ह्न इस इच्छा में पाँचों इन्द्रियों के विषय ग्रहण की बात है। जैसे ह्न वर्ण देखने की इच्छा, राग सुनने की इच्छा आदि। **दूसरी इच्छा** ह्न कषायभावों के अनुसार कार्य करने की है। जैसे ह्न क्रोध से किसी को पीड़ा पहुँचाने की इच्छा, किसी का बुरा करने की इच्छा, मान से किसी को नीचा दिखाने की इच्छा आदि। **तीसरी इच्छा** ह्न पापोदय से उत्पन्न इच्छा है। इस इच्छा में रोग, पीड़ा, क्षुधा, तृषा आदि होने पर उन्हें दूर करने की इच्छा होती है। **चौथी इच्छा** ह्न इसमें उपर्युक्त तीनों इच्छाओं के अनुसार प्रवर्तन करने की इच्छा होती है।

ये चारों ही इच्छायें दुःखद हैं। सम्यग्ज्ञान के बल पर इनका निरोध करना तप है। तत्त्वज्ञान के अभ्यास से विषय-कषायों को दुःखद माने बिना इनका निरोध संभव नहीं है।

अनादिकाल से अज्ञान अवस्था में ये प्राणी इन इच्छाओं के आधीन हुआ इनकी पूर्ति में परेशान रहा है। कभी पूर्व पुण्योदय से कोई एक इच्छा पूर्ण होती है तो अन्य अनेक इच्छायें उत्पन्न हो जाती हैं। अतः ज्ञानीजन तत्त्वज्ञान के सहारे इनका निरोध करने का जो प्रयत्न करते हैं, वही तप है।

तप मूलतः दो प्रकार है। एक बाह्य तप, दूसरा अन्तरंग तप। बाह्य तप के छह भेद इसप्रकार हैं ह्न अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश।

अभ्यन्तर तप के छह भेद इसप्रकार हैं ह्न प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान।

'बाह्य-अभ्यन्तर सभी प्रकार के तपों में इच्छा का निरोध एवं निजस्वरूप में प्रवृत्ति अनिवार्य है। यदि किसी कार्य में इच्छा की अभिवृद्धि पायी जाए तो वह कृत्य तप संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता।

वास्तविकता तो यह है कि जबतक अपने परिपूर्ण स्वरूप की प्रतीति और उसमें प्रवृत्ति नहीं होगी, तबतक अवश्य ही इच्छाओं की उत्पत्ति होगी; अतः इच्छाओं के निरोध के लिए निज चैतन्यस्वभाव की परिपूर्णता का संवेदन होना अति आवश्यक है।

'जब मैं स्वभाव से ही परिपूर्ण शुद्ध चैतन्यसत्ता हूँ और मुझमें रंचमात्र की भी कमी नहीं है तो मैं पर की आशा क्यों करूँ? पर से मुझे कुछ प्राप्त हो ह्न ऐसा भाव भी मुझमें नहीं है।' इस प्रकार स्वभावसन्मुखता के चिन्तवन एवं अनुभवन से ही इच्छा का निरोध सम्भव है।

बाह्य का अर्थ है बाहर से औरों को दिखायी दे कि यह तपस्वी है। बाह्य द्रव्य के अवलम्बन से दूसरों को देखने में आनेवाले तप बाह्य तप हैं।

जिस तप की साधना शरीर से सम्बन्धित हो या जिसके द्वारा शरीर का मर्दन हो जाने से इन्द्रियों का दमन हो जाता है, वह बाह्य तप है।

'अभ्यन्तर तप के लिए बाह्य तप साधन के रूप में है; अतः अभ्यन्तर तप प्रधान है। यह अभ्यन्तर तप शुभ और शुद्ध परिणामों से युक्त रहता है, इसके बिना बाह्य तप कर्म-निर्जरा करने में असमर्थ है।[१]'

'बाह्य तप शुद्धोपयोग बढ़ाने को करते हैं। शुद्धोपयोग निर्जरा का कारण है, इसलिए उपचार से तप को निर्जरा का कारण कहा है।

'जिसके द्वारा मन में दुष्कृत अर्थात् संक्लेश परिणाम उत्पन्न नहीं होते, जिस तप के करने से अभ्यन्तर तप में श्रद्धा उत्पन्न होती है तथा जिनसे पूर्वगृहीत महाव्रत आदि हीन नहीं होते ह्न इस प्रकार के बाह्य तपों का अनुष्ठान करना चाहिए।[२]'

आत्मसाधक सन्तों का एकमात्र लक्ष्य शुद्धोपयोग की अभिवृद्धि करते हुए पूर्णता को प्राप्त करना है। बाह्य तप में भी खाने-पीने इत्यादि के विकल्पों से निवृत्त होकर शुद्धोपयोग की साधना करना ही उद्देश्य होता है; अतः बाह्य तप, आभ्यन्तर रागभाव की कमी के सूचक भी हैं। हाँ, यदि अन्तरंग में रागभाव में कमी नहीं हुई हो और मानादि कषाय के वशीभूत होकर बाह्य तप किये जायें, तो उन्हें तप नहीं कहा जाएगा।

ध्यान रहे, कोई भी आभ्यन्तर अथवा बाह्य तप सम्यग्दर्शन के बिना समीचीन नहीं होता। सम्यग्दर्शन से रहित मिथ्यादृष्टि के तप को तो बालतप कहा गया है, जो संवरपूर्वक निर्जरा का कारण

१. भ. आ., गाथा- १३४८/१३०६ २. मूलाधार ५/१६१

नहीं होता। यही कारण है कि तत्त्वार्थसूत्र की सभी टीकाओं में तपों के स्वरूप का वर्णन करते हुए सबके साथ 'सम्यक्' पद लगाने का निर्देश दिया गया है।

तप का प्रयोजन राग–द्वेष आदि विकारों को सदा के लिए दूर करना आत्म–परिशोधन है, न कि मात्र देह–दमन। तप के माध्यम से आत्मशुद्धि हेतु विकारों को तपाया जाता है, न कि शरीर को। शरीर तो आत्मशुद्धि और आत्मसाधना का माध्यम मात्र है। वस्तुतः जो ज्ञानस्वभाव की भावना भाता है, उसे बाह्य तप स्वयमेव हो जाता है और अभ्यन्तर तप तो स्वयं आत्मा के ज्ञान, ध्यान आदि रूप हैं, जो आत्मविशुद्धि का साक्षात् साधन है। अतः तप को साधक के जीवन की कसौटी माना जाता है।

बारह तपों की व्याख्या करते हुए आचार्यश्री ने कहा ह्न 'अन्तरंग तपों में प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग (त्याग) और ध्यान के बाह्य प्रवर्तन को भी बाह्यतपवत् कहते हैं। जिसप्रकार बाह्य तपों में अनशनादि बाह्य क्रियायें हैं, उसीप्रकार इनमें भी जो बाह्य क्रियायें हैं; वे बाह्य तपवत् ही हैं, इसलिए प्रायश्चित्तादि बाह्य साधनों को अन्तरंग तप नहीं कहते। **ऐसे बाह्य प्रवर्तन होने पर जो अन्तरंग परिणामों की शुद्धता होती है उसका नाम अन्तरंग तप है।**[१]'

ये प्रायश्चित्त आदि अन्तरंग तप अंतःकरण के व्यापार का अवलंबन लेकर होते हैं; इसीलिए भी इनको अन्तरंग तप कहते हैं। ये बाह्य द्रव्यों की अपेक्षा नहीं रखते।[२]

'मन का नियमन करनेवाला होने से भी इन्हें आभ्यन्तर तप कहते हैं।[३]'

पहला प्रायश्चित तप है, इसमें प्रमादजन्य दोष का परिहार करना होता है। 'प्रायश्चित्त शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है ह्न प्रायः+चित्त। यहाँ प्रायः शब्द का अर्थ **लोक** या **लोग** होता है और चित्त शब्द का अर्थ **मन** होता है। जिस ज्ञान–क्रिया के द्वारा साधर्मी और संघ में रहनेवाले लोगों का मन अपनी तरफ से शुद्ध हो जाये, उस ज्ञान क्रिया को प्रायश्चित्त कहते हैं।[४]'

'जो ज्ञानी मुनि ज्ञानस्वरूप आत्मा का बारम्बार चिन्तन करता है और विकल्पादि प्रमादों से जिनका मन विरक्त रहता है, उनके उत्कृष्ट प्रायश्चित्त होता है।[५]'

'जिस ज्ञान क्रिया से पूर्व में किये पापों से मन निर्दोष हो जाय वह प्रायश्चित्त तप है। प्रतिसमय लगनेवाले अन्तरंग व बाह्य दोषों की निवृत्ति करके अन्तःकरणशोधन करने के लिए किया गया पश्चात्ताप या दण्ड रूप में उपवास आदि का ग्रहण प्रायश्चित्त कहलाता है। बाह्य दोषों का प्रायश्चित्त पश्चात्ताप मात्र से हो जाता है, पर अन्तरंग दोषों का प्रायश्चित्त गुरु के समक्ष आलोचनापूर्वक दण्ड को स्वीकार किये बिना नहीं होता।[१]'

दूसरा विनयतप है इसके दो भेद हैं ह्न व्यवहार तप, दूसरा निश्चय तप। रत्नत्रय को धारण करनेवाले पुरुषों के प्रति नम्रवृत्ति धारण करना व्यवहार या उपचार से विनय तप है। **तथा अपने रत्नत्रयरूप गुण की विनय निश्चय विनय है और रत्नत्रयधारी साधुओं की विनय व्यवहार या उपचार विनय है।**

मोक्षमार्ग में विनय का प्रधान स्थान है। ये दोनों ही अत्यन्त प्रयोजनीय हैं। ज्ञानप्राप्ति में गुरुविनय अत्यन्त प्रधान है। साधु, आर्यिका आदि चतुर्विध संघ में परस्पर में विनय करने सम्बन्धी जो नियम हैं, उन्हें पालन करना व्यवहार विनय है तथा मिथ्यादृष्टियों व कुलिंगियों की विनय करना विनय मिथ्यात्व है।

'मोक्ष के साधनभूत सम्यग्ज्ञानादि में तथा उनके साधक गुरु आदि में अपनी योग्य रीति से सत्कार, आदर आदि करना तथा कषाय की निवृत्ति करना विनय–सम्पन्नता भावना है।[२]'

विनय तप समझने में सावधानी की विशेष जरूरत इस कारण है कि ह्न विनय सबसे बड़ा धर्म, सबसे बड़ा पुण्य एवं सबसे बड़ा पाप भी है। विनय तप के रूप में सबसे बड़ा धर्म, सोलहकारण भावनाओं में विनयसम्पन्नता सबसे बड़ा पुण्य और विनय मिथ्यात्व के रूप में अनन्त संसार का कारण होने से सबसे बड़ा पाप है। इस कारण विनय के प्रयोग में सजग रहना आवश्यक है।

तीसरा वैयावृत्त्य तप है। जो निर्यापक साधु वांछा रहित होकर अपनी चेष्टा से, उपदेश से और यथायोग्य वस्तु से उपसर्ग पीड़ित तथा जरा–रोगादि से क्षीणकाय यतियों का उपकार करता है; उसके वैयावृत्य नामक व्यवहार तप होता है।

प्रवचनसार गाथा २५२ में कहा है कि ह्न 'रोग से, क्षुधा से, तृषा से अथवा श्रम से थके हुए श्रमण को देखकर निर्यापक साधु द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार यथायोग्य उनके कष्ट निराकरण का उपाय करना निर्णायक का व्यवहार वैयाव्रततप है।

'गुणों से अधिक, उपाध्याय, तपस्वी, दुर्बलसाधुगण, कुल, संघ और मनोज्ञता सहित मुनियों पर आपत्ति के प्रसंग में उसकी निर्वृत्ति का उपाय करना भी व्यवहार वैयाव्रत तप है।'

उपर्युक्त सम्पूर्ण आगम उद्धरणों से सिद्ध है कि शुभोपयोगी मुनिराज किसी भी प्रकार के प्रत्युपकार की अपेक्षा बिना रोगादि से पीड़ित मुनिराज की सेवा आदि करके उन्हें धर्म में स्थिर चित्त रखने हेतु जो परिचर्या करते/कराते हैं वह भी व्यवहार वैयाव्रत तप हैं। **(क्रमशः)**

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ–२३२ २. राजवार्तिक ९/२०
३. सर्वार्थसिद्धि ९/२० ४. अनगार धर्मामृत, ७/३७
५. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा ४५५

१. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष, भाग–३, पृष्ठ–१५ २०. राजवार्तिक, ६/२४

(आगामी कार्यक्रम...)

पाँचवे ग्रुप शिविर का आयोजन

भिण्ड (म.प्र.) : श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन एवं श्री कुन्दकुन्द स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, भिण्ड तथा अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन शाखा–देवनगर भिण्ड (म.प्र.) के संयुक्त तत्त्वावधान में **दिनांक 29 मई से 9 जून 2009 तक सामूहिक जैन बाल संस्कार शिक्षण शिविर** का आयोजन किया जा रहा है। इस वर्ष मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के 81 स्थानों पर शिविर लगाने का लक्ष्य है। जिसके लिये हमें लगभग 175 विद्वानों की आवश्यकता होगी। अतएव जो महानुभाव बालबोध पाठमाला भाग 1,2,3, वीतराग–विज्ञान पाठमाला 1,2,3 व छहढाला आदि पढा सकते हों, वे हमें मोबाईल नम्बर 09826644 (डॉ. सुरेश जैन) या 9826761410 (पं. आशीष शास्त्री) पर सूचना करने की कृपा करें। **ह्न डॉ. सुरेश जैन (सह मंत्री)**

श्री कुन्दकुन्द स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट देवनगर कॉलनी, इटावा रोड, भिण्ड

विचार गोष्ठी सम्पन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ राजस्थान जैन सभा द्वारा भट्टारकजी की नसियाँ में दिनाँक 20 मार्च,09 को भगवान आदिनाथ व भरतचक्रवर्ती के जन्म जयन्ती की पूर्व संध्या पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी में पण्डित शांतिकुमारजी पाटिल ने प्रमुख वक्ता के रूप में समाज व्यवस्था में राजा ऋषभदेव और भरत चक्रवर्ती का योगदान विषय पर अपने विद्वत्तापूर्ण विचार व्यक्त कर सभी को लाभान्वित किया। साथ ही प्रमुख वक्ता के रूप में डॉ. सोहनलालजी गाँधी और डॉ.जे.डी. जैन ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

सभा की अध्यक्षता श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री बनवारीलाल जी सिंघल विधायक (अलवर) मंचासीन थे। सभा का सफल संचालन श्री महेशचन्दजी चांदवाड़ ने किया।

सी. डी. एवं डी. वी. डी. पर विशेष छूट

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर से डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के प्रवचनों की सी.डी और डी.वी.डी अब और आकर्षक रूप एवं कम कीमत में उपलब्ध ह्न

सी.डी. मात्र 20/– रुपये एवं डी.वी.डी. मात्र 25/– रुपये में

50 सी.डी. अथवा 50 डी. वी. डी. का एक साथ ऑर्डर देने पर 20 प्रतिशत की छूट भी दी जायेगी और साथ में पोस्टेज फ्री।

अब आप सी.डी और डी.वी.डी के ऑर्डर फोन पर भी बुक करा सकते हैं। **सम्पर्क ह्न** अभिजीत पाटील, प्रवचन प्रसार विभाग, अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए–4, बापूनगर, जयपुर–15 (राज.), मो. 09887502410

नवम वार्षिक महोत्सव सम्पन्न

जबलपुर : यहाँ श्री महावीरस्वामी दिगम्बर जैन मंदिर, बड़ा फुहारा में दिनांक 17 से 22 फरवरी, 09 तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का नवम वार्षिक महोत्सव सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर कविवर थानमलजी द्वारा रचित श्री विद्यमान बीस तीर्थंकर मंडल विधान महोत्सव का आयोजन किया गया। यह विधान प्रथम बार जबलपुर में हुआ, जिससे सभी को अत्यन्त आनन्द हुआ। इस विधान का अर्थ आमंत्रित विद्वान पण्डित अभयकुमारजी जैनदर्शनाचार्य, देवलाली ने अपने मार्मिक व्याख्यानों में किया, जिससे इस विधान का सभी को विशेष रसास्वादन हुआ।

रात्रि में भी पण्डित अभयकुमारजी द्वारा रत्नकरण्डश्रावकाचार के भावना अधिकार से आर्तध्यान व रौद्रध्यान के प्रकरण पर मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। विधि–विधान के समस्त कार्यक्रम पण्डित संजयजी शास्त्री अलीगढ ने सम्पन्न कराये। साथ ही आपके मोक्षमार्गप्रकाशक पर मार्मिक व्याख्यानों का लाभ मिला। दोपहर में पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर के समयसार पर मार्मिक व्याख्यान हुये।

इस अवसर पर धार्मिक लाभ लेने हेतु देवलाली व सोनगढ से ब्र. बहिने पधारीं। रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम भी हुये, जो तात्विक व सादगी पूर्ण थे। इसतरह यह आयोजन विशेष उत्साह व प्रभावना के साथ सम्पन्न हुआ।

विधान के आयोजनकर्ता श्रीमती भूरीबाईजी, जैन दिगम्बर एजेन्सी परिवार जबलपुर थे। सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, जबलपुर शाखा ने किया।

हार्दिक बधाई

1. झालरापाटन निवासी श्री हितेशजी पाटनी के सुपुत्र चि.विक्रांत पाटनी का श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन की सुपुत्री सौ.प्रियंका के साथ तथा श्री हितेशजी पाटनी की ही सपुत्री सौ.उर्वशी का श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन के ही सुपुत्र चि. चिन्मय जैन के साथ शुभविवाह के अवसर पर श्रीमती संपतदेवी पाटनी एवं श्रीमती सुनीताजी पाटनी झालरापाटन की ओर से जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग–विज्ञान के लिये कुल दो हजार रुपये की राशि प्राप्त हुई।

2. श्री धनकुमारजी जैन जयपुरवाले (सूरत) की सुपौत्री/श्री पीयूषकुमारजी की सुपुत्री सुश्री धवला **का** कोलकाता निवासी श्री बालचन्दजी पाटनी के सुपौत्र/ श्री सुरेशजी पाटनी के सुपुत्र चि. परागजी के साथ दिनांक 15 मार्च को **सगाई समारोह** सम्पन्न हुआ है। इस उपलक्ष में वीतराग–विज्ञान एवं जैनपथप्रदर्शक को कुल 500/–रुपये प्राप्त हुये हैं।

जैनपथप्रदर्शक समिति और वीतराग–विज्ञान की ओर से आपको हार्दिक बधाई। **ह्न प्रबन्ध सम्पादक**

43 वाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर कोलारस में

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की प्रेरणा से निर्मित पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित तियालीसवाँ श्री वीतराग–विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण–प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष दिनांक 13 मई से 29 मई, 2009 तक कोलारस (म.प्र.) में होना निश्चित हुआ है। शिविर के माध्यम से अध्ययन करानेवाले बन्धुओं (अध्यापकों) एवं मुमुक्षु भाई–बहिनों को शिक्षण–विधि में प्रशिक्षित किया जायेगा।

इस अवसर पर आपको डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल जयपुर, ब्र. यशपालजी जैन जयपुर, पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा जयपुर, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, ब्र. अभिनन्दनजी खनियांधाना, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील जयपुर, पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन, पण्डित मनीषजी शास्त्री रहली आदि अनेक विद्वानों के प्रवचनों/कक्षाओं का लाभ मिलेगा।

प्रशिक्षण शिविर में पहुँचने वाले भाई–बहनों को इसकी पूर्व सूचना निम्नांकित पते पर अवश्य भेज देवें, ताकि उनके ठहरने एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था की जा सके।

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए–4, बापूनगर, जयपुर ह्न 15 (राज.)
फोन नं. (0141) 2705581/2707458

कोलारस का पता ह्न श्री देवेन्द्रकुमार जैन, होटल फूलराज कम्पाउण्ड, कोलारस, जिला–शिवपुरी (म.प्र), मो.09425489646

कोलारस पहुँचने हेतु साधन

बस – कोलारस झांसी से 110 कि.मी.वाया शिवपुरी, ग्वालियर से 120 कि.मी. तथा गुना से 40 कि.मी. की दूरी (आगरा–बम्बई हाईवे ए.बी.रोड)पर है। तीनों स्थानों से कोलारस के लिये बसें चलती ही रहती हैं।

ट्रेन – इन्दौर से (4317) इन्दौर–देहरादून शनिवार एवं रविवार दोपहर 3 बजे, दिल्ली (ह.नि.) से (4318) देहरादून–इन्दौर शुक्रवार एवं शनिवार दोपहर 1.30 बजे उपलब्ध है। विस्तृत जानकारी के लिये इस ट्रेन की मार्ग सारणी देख लेवें।

अहिंसा धर्मोपदेशक वर्तमान शासननायक तीर्थंकर महावीरस्वामी का 2608 वाँ जन्मकल्याणक जयवंत वर्तो !

आइये ! तीर्थंकर महावीरस्वामी के जन्मकल्याणक पर हम संकल्प लें–

हे प्रभु ! मैं वीतरागी जैनधर्म के श्रद्धा–ज्ञान और आचरण बिना इस महाकष्टमय संसार में अनादिकाल से परिभ्रमण करते–करते थक गया हूँ। अब, मैं इस महाकष्ट से मुक्ति चाहता हूँ, अत: प्रतिज्ञा करता हूँ कि–

1. वीतरागी देव–शास्त्र–गुरु के अतिरिक्त रागी–द्वेषी देवी–देवताओं की पूजा–प्रभावनादि का कार्य नहीं करूँगा।
2. अतीन्द्रिय आनन्दमय आत्म स्वरूप का बोध करने के लिए प्रतिदिन जिनेन्द्र देव का दर्शन करूँगा।
3. स्व–पर कल्याणकारी जैनधर्म के सिद्धान्तों का रहस्य जानने हेतु प्रतिदिन जिनवाणी का स्वाध्याय अवश्य करूँगा।
4. अनंतानंत जीवों की हिंसा में कारणभूत रात्रि–भोजनादि नहीं करूँगा तथा मैं जुआ, शराब, गुटखा, तम्बाकू इत्यादि का सेवन नहीं करूँगा।
5. सूक्ष्म त्रस जीवों की रक्षा हेतु पानी छानकर प्रयोग में लूँगा।
6. अनंतानंत जीवों की हिंसा में कारणभूत आलू , प्याज, लहसुन, गाजर, मूली, अदरक आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करूँगा।
7. अनंत कष्ट से उत्पन्न सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के शरीर से बने चमड़े के बेल्ट, पर्स, जूते आदि का प्रयोग नहीं करूँगा।
8. हिंसा को प्रोत्साहन देने वाले कार्यों का त्याग करता हूँ, मै कोशिश करूँगा कि मेरी जीवन शैली पूर्णत: अहिंसक हो।
9. मै किसी के भी दिल दुखाने में निमित्त नहीं बनूँगा।
10. मैं कोई भी ऐसा कार्य नहीं करूँगा, जिससे जिनशासन की आराधना प्रभावना में बाधा पहुँचे।

अनेकश: शुभकामनाओं सहित, विपिन जैन शास्त्री

चिरंतन ज्वेलर्स

(आभूषणों की आकाशगंगा में दैदीप्यमान एक प्रामाणिक प्रतिष्ठान)

डायमण्ड, गोल्ड, सिल्वर ज्वैलरी की शुद्धता और सुंदरता का मणिकांचन संयोग

179, साईंबाबा बेकरी के सामने, सराफा बाजार, न्यू इतवारी रोड नागपुर (महा.) फोन नं. 0712–2722191 मो.09860140111

मोक्षमार्ग प्रकाशक का सार 25

पाँचवाँ प्रवचन

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

हम निरंतर स्वाध्याय करते हैं, प्रवचन सुनते हैं; हमारे क्षयोपशम ज्ञान में भी यह बात आ जाती है कि आत्मा इन शरीरादि तथा स्त्री-पुत्रादि संयोगों से भिन्न है, इन संयोगी पदार्थों पर इस आत्मा का रंचमात्र भी अधिकार नहीं है, इनमें कुछ भी फेरफार करना संभव नहीं है, इनका उपभोग करना भी संभव नहीं है; क्योंकि इनके और आत्मा के बीच में अत्यन्ताभाव की वज्र की दीवाल है। तत्त्वचर्चा में भी हम ऐसी ही चर्चा करते हैं; प्रवचन के माध्यम से दूसरों को समझाते भी हैं; तथापि प्रवचन या चर्चा के बीच में ही जब कोई हमसे पूछता है कि तुम्हारी ऊँचाई कितनी है, वजन कितना है तो हम तत्काल बोल उठते हैं कि मेरी ऊँचाई ५ फीट ९ इंच है, वजन ७२ किलो है।

उस समय भी हमें यह होश नहीं रहता कि यह ऊँचाई और वजन तो शरीर का है, मेरा नहीं; क्योंकि हमारे अन्तर में अगृहीत मिथ्यात्व के कारण देह में एकत्वबुद्धि अत्यन्त गहराई से समाहित है।

बार-बार टोकने पर हम कदाचित् सावधान भी हो जावें और कहने लगे कि मुझमें वजन कहाँ है ? मैं तो चेतन तत्त्व हूँ, उसमें वजन होता ही नहीं; क्योंकि वजन तो पुद्गलद्रव्य की पर्याय है; फिर भी अन्तर में शरीर के प्रति एकत्व-ममत्व बना रहता है। यह सब अगृहीत मिथ्यात्व के जोर का परिणाम है। जबतक यह आत्मा अंतर्मुखी पुरुषार्थ द्वारा देह में विद्यमान देह से भिन्न भगवान आत्मा को जान नहीं लेता, पहिचान नहीं लेता, अनुभव नहीं कर लेता, आत्मानुभूति से सम्पन्न नहीं हो जाता; तबतक देहादि में एकत्व-ममत्वरूप अगृहीत मिथ्यात्व विद्यमान रहता ही है।

जिसका जिसमें एकत्व होता है, वह उसके प्रति विशेषरूप से सजग रहता है। इस बात को प्रमाणित करने के लिए एक प्रयोग किया गया। दश लोगों को एक ही मात्रा की नींद की गोली खिलाकर सुला दिया गया।

जब वे गहरी नींद में चले गये तो सभी के कान में रमेशचन्द्र नाम को एक से मन्द स्वर में सुनाया गया। तब रमेशचन्द नाम का व्यक्ति तो जाग गया, पर शेष सभी सोते रहे। फिर उसी मन्द स्वर में सभी को सुरेशचन्द नाम को सुनाया गया तो सुरेशचन्द तो जाग गया, पर शेष सोते रहे; वह रमेशचन्द भी सोता रहा, जो रमेशचन्द शब्द सुनकर जाग गया था।

ऐसा ही प्रत्येक के साथ किया गया, पर सभी अपना-अपना नाम सुनकर जागे, अन्य किसी का नाम सुनकर कोई नहीं जागा।

इसका अर्थ यह हुआ कि जिसका जिस नाम के साथ एकत्व था, अपनापन था; वह उस नाम के प्रति नींद में भी सतर्क था, सावधान था और जिसके साथ एकत्व नहीं था, उसके प्रति सहज उदासीनता थी। तात्पर्य यह है कि जिसके साथ हमारा अपनापन होता है, एकत्व होता है, ममत्व होता है; उसके प्रति सावधानी-जागृति सोते-जागते निरन्तर बनी रहती है।

उसके बाद सभी को उतने ही मंद स्वर में 'आत्मा' शब्द सुनाया गया, पर कोई नहीं जागा। आवाज को थोड़ा तेज किया गया, फिर भी कोई नहीं जागा और अधिक तेज करने पर भी कोई नहीं जागा। इससे सिद्ध हो गया कि दिन-रात आत्मा की चर्चा करनेवाले उन लोगों में से किसी के भी हृदय में आत्मा के प्रति अपनापन नहीं है, एकत्व नहीं है, ममत्व नहीं है, जागृति नहीं है, सावधानी नहीं है। इससे सहज ही सिद्ध होता है कि वे सभी देहादि में एकत्वबुद्धिवाले अगृहीत मिथ्यादृष्टि जीव हैं; क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीवों को तो आत्मा के प्रति सतत् सावधानी रहती है, जागृति रहती है।

इस अज्ञानी जीव को जैसा एकत्व-ममत्व मनुष्यरूप असमानजातीय द्रव्यपर्याय में है; वैसा ही एकत्व-ममत्व जबतक स्वयं अपने आत्मा में नहीं आता, स्वयं में नहीं आता; तबतक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति संभव नहीं है। आत्मानुभूतिपूर्वक स्वयं में, स्वयं के आत्मा में एकत्व-ममत्व आये और श्रद्धा व ज्ञान में निरन्तर बना रहे, कभी-कभी उपयोग की एकाग्रतारूप ध्यान में भी आये तो समझ लेना कि हम सम्यग्दृष्टि हैं।

यद्यपि अनुभूति सदा नहीं रहती; तथापि ज्ञानियों के ज्ञान-श्रद्धान में आत्मा सदा बना रहता है।

आत्मा की प्राप्ति का एकमात्र यही उपाय है; सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति की भी यही प्रक्रिया है। आत्मा की प्राप्ति और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति एक ही बात है। जब द्रव्य की ओर से बात करते हो तो आत्मा की प्राप्ति कहते हैं और जब पर्याय की ओर से बात करते हैं तो उसी को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति कहते हैं।

यह बात सुनिश्चित ही है कि जबतक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती; तबतक सभी जीव अगृहीत मिथ्यादृष्टि ही हैं और उनके नियम से असमानजातीयद्रव्यपर्यायरूप मनुष्यादि अवस्थाओं में एकत्वबुद्धि, ममत्वबुद्धि, कर्तृत्वबुद्धि, भोक्तृत्वबुद्धि या भ्रमबुद्धि रहती ही है।

इसमें कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु निमित्त भी नहीं होते; क्योंकि किसी भी व्यक्ति ने हमें यह नहीं समझाया कि मैं देह में एकत्व-ममत्व करूँ और न हमने किसी के कहने से देहादि में एकत्व-

ममत्व स्थापित किया है।

यदि कोई समझाता भी है तो वह हमारी देह में एकत्वबुद्धिरूप अनादि मिथ्यामान्यता को मात्र पुष्ट करता है, पैदा नहीं करता।

उसके कहने पर यदि हम अपनी देह में एकत्वबुद्धिरूप पुरानी मान्यता को दृढ करते हैं तो फिर अगृहीत मिथ्यादृष्टि के साथ–साथ गृहीत मिथ्यादृष्टि भी हो जाते हैं।

प्रश्न ह्न आप कहते हैं कि अगृहीत मिथ्यात्व में कोई निमित्त नहीं होता; वह तो अपनी उपादानगत योग्यता से स्वयं होता है और अनादिकाल से है। क्या यह ठीक है ? तथा उत्पन्नध्वंसी पर्याय अनादि कैसे हो सकती है ?

उत्तर ह्न यह हमने कब कहा कि अगृहीत मिथ्यादर्शन में कोई निमित्त नहीं होता। हम तो यह कहते हैं कि इसमें कुदेवादि बाह्य निमित्त नहीं होते। अगृहीत मिथ्यात्व में भी मिथ्यात्व कर्म का उदयरूप अंतरंग निमित्त तो है ही।

इसीप्रकार अगृहीत मिथ्यात्व भी प्रतिसमय नया–नया ही उत्पन्न होता है; पर संतति की अपेक्षा अनादि है और अभव्यों की अपेक्षा अनंतकाल तक रहेगा; क्योंकि जिनवाणी में एक अनादिनित्य–पर्यायार्थिक नय भी है; जिसकी अपेक्षा पर्याय अनादिनिधन भी होती है।

उक्त सम्पूर्ण चर्चा अगृहीत मिथ्यादृष्टि की, जीव–अजीव तत्त्वों के संबंध में हुई भूलों की हो रही है। यद्यपि जीव और पुद्गल ह्न दोनों द्रव्य अत्यन्त भिन्न हैं; तथापि एकक्षेत्रावगाह संबंध देखकर अगृहीत मिथ्यादृष्टि दोनों को एक ही मान लेता है और उनके मिले हुए रूप में अपना अपनापन और स्वामित्व स्थापित कर लेता है। यही उसकी जीवतत्त्व और अजीवतत्त्व के संबंध में भूल है।

अब आस्रवतत्त्व सबंधी भूल की चर्चा करते हैं। मोह–राग–द्वेषरूप भाव ही मुख्यरूप से आस्रवभाव हैं। यद्यपि ये आस्रवभाव आत्मा को अनन्त दु:ख देनेवाले हैं; तथापि यह उनमें भी शुभ–अशुभ का भेद करके शुभास्रव को सुखदायी मानने लगता है।

छहढाला में साफ–साफ लिखा है कि ह्न

रागादि प्रगट ये दु:ख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन।

ये रागादिभावरूप आस्रवभाव दु:ख देनेवाले हैं ह्न यद्यपि यह बात अत्यन्त प्रगट है, स्पष्ट है; तथापि यह अगृहीत मिथ्यादृष्टि जीव उन रागादि भावों का सेवन करते हुए आनन्द का अनुभव करता है। आस्रव भावों में इसकी यह सुखबुद्धि अनादि से ही है। इसलिए यह अगृहीत मिथ्यादर्शन है।

आस्रवभाव सबंधी विपरीत मान्यता का स्वरूप स्पष्ट करते हुए पण्डितजी लिखते हैं कि ह्न

''तथा इस जीव को मोह के उदय से मिथ्यात्व–कषायादिक भाव होते हैं, उनको अपना स्वभाव मानता है, कर्मोपाधि से हुए नहीं जानता। दर्शन–ज्ञान उपयोग और ये आस्रवभाव ह्न इनको एक मानता है; क्योंकि इनका आधारभूत तो एक आत्मा है और इनका परिणमन एक ही काल में होता है; इसलिए इसे भिन्नपना भासित नहीं होता और भिन्नपना भासित होने का कारण जो विचार है, सो मिथ्यादर्शन के बल से हो नहीं सकता।

तथा ये मिथ्यात्व–कषायभाव आकुलता सहित हैं; इसलिए वर्तमान दु:खमय हैं और कर्मबंध के कारण हैं; इसलिए आगामी काल में दु:ख उत्पन्न करेंगे ह्न ऐसा उन्हें नहीं मानता और भला जान इन भावोंरूप होकर स्वयं प्रवर्तता है।

तथा वह दु:खी तो अपने इन मिथ्यात्व एवं कषायभावों से होता है और वृथा ही औरों को दु:ख उत्पन्न करनेवाला मानता है। जैसे ह्न दुखी तो मिथ्याश्रद्धान से होता है, परन्तु अपने श्रद्धान के अनुसार जो पदार्थ न प्रवर्ते, उसे दु:खदायक मानता है।

तथा दु:खी तो क्रोध से होता है, परन्तु जिससे क्रोध किया हो, उसको दु:खदायक मानता है। दु:खी तो लोभ से होता है, परन्तु इष्ट वस्तु की अप्राप्ति को दु:खदायक मानता है ह्न इसीप्रकार अन्यत्र जानना।[१]''

यह अगृहीत मिथ्यादृष्टि जीव आत्मस्वभाव को भूलकर शुभबंध के फल में राग करता है और अशुभबंध के फल में द्वेष करता है। इसप्रकार राग–द्वेष करता हुआ निरन्तर दु:खी रहता है। कर्मफल चेतना अर्थात् कर्मों के उदय को भोगते रहना ही इसकी नियति है।

बंधतत्त्व की भूल के संबंध में पण्डितजी लिखते हैं ह्न

''तथा इन आस्रवभावों से ज्ञानावरणादि कर्मों का बंध होता है। उनका उदय होने पर ज्ञान–दर्शन की हीनता होना, मिथ्यात्व–कषायरूप परिणमन होना, चाहा हुआ न होना, सुख–दु:ख का कारण मिलना, शरीरसंयोग रहना, गति–जाति–शरीरादिक का उत्पन्न होना, नीच–उच्च कुल का पाना होता है। इनके होने में मूलकारण कर्म है, उसे यह पहिचानता नहीं है, क्योंकि वह सूक्ष्म है, इसे दिखायी नहीं देता; तथा वह इसको इन कार्यों का कर्त्ता दिखायी नहीं देता; इसलिए इनके होने में या तो अपने को कर्त्ता मानता है या किसी और को कर्त्ता मानता है। तथा अपना या अन्य का कर्त्तापना भासित न हो तो मूढ होकर भवितव्य को मानता है।

इसप्रकार बन्धतत्त्व का अयथार्थ ज्ञान होने पर अयथार्थ श्रद्धान होता है।[२]'' **(क्रमश:)**

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ–८२

2 अप्रैल 2009, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-61 / 2009-11

शोक समाचार

1. **सोनगढ निवासी ब्र.चन्दूभाई खीमचन्द जोबालिया** का शांत परिणामों पूर्वक 86 वर्ष की उम्र में देहावसान हो गया। आप गुरूदेवश्री के अनन्य भक्त थे। आपने गुरुदेवश्री की अन्तिम समय तक सेवा का भरपूर लाभ लिया। आप सोनगढ में प्रतिदिन शास्त्र-स्वाध्याय, शिविरों में धार्मिक कक्षाएँ संचालित करते थे एवं सोनगढ ट्रस्ट द्वारा सम्पन्न होनेवाले पंच कल्याणकों के मुख्य प्रतिष्ठाचार्य थे। आप संस्कृत, प्राकृत भाषा के भी अच्छे विद्वान थे। जयपुर खानियां तत्त्वचर्चा में भी आपने पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री के साथ महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था।

2. **कोलारस-शिवपुरी (म.प्र.) निवासी श्री चिंतामणजी एडवोकेट** का दिनांक 24 मार्च, 09 को शांतपरिणामों पूर्वक देहावसान हो गया। आप सरल स्वभावी, स्वाध्याय प्रिय व्यक्ति थे। आप सोनगढ एवं जयपुर में लगनेवाले शिविरों में आया करते थे। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर से चलनेवाली सभी गतिविधियों में आपका सदैव हृदय से सहयोग रहता था।

3. **जयपुर निवासी** श्री प्रमोदजी जैन-जयपुर प्रिन्टर्सवालों की **मातुश्री** का दिनाँक 16 मार्च, 09 को शांतपरिणामों पूर्वक देहावसान हो गया। आप धार्मिक विचारों वाली महिला थीं।

4. **मुजफ्फरनगर निवासी श्री सुमेरचन्दजी जैन** (सम्पादक वर्णी प्रवचन) का दिनाँक 3 फरवरी, 09 को प्रात: 9 बजे समाधिमरण पूर्वक देहविलय हो गया। आपने निधन के एक माह पूर्व अन्न जल का पूर्ण त्याग कर दिया था। आपने अपना पूरा जीवन जिनवाणी के प्रकाशन एवं प्रसार में ही लगाया। आपने अनेक ग्रंथों का प्रकाशन एवं सम्पादन किया। आप जीवन पर्यंत स्वाध्याय करते रहे। आपके जीवन पर श्री सहजानंदजी वर्णी महाराज का विशेष प्रभाव था।

5. **बाराबंकी निवासी श्री महावीरप्रसादजी दीवान** सीकरवालों का दिनाँक 10 मार्च, 09 को शांतपरिणामों पूर्वक देहावसान हो गया। आपकी धर्म में बहुत रुचि थी। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक को 1000/-रुपये प्राप्त हुये हैं।

6. **पिपरा निवासी चौधरी ताराचन्दजी** का दिनांक 17 मार्च को पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुए देह विलय हो गया। आप एक सदाचारी सहिष्णु धार्मिक विचारवाले सद्गृहस्थ थे। ज्ञातव्य है आप श्री टोडरमल महाविद्यालय स्नातक श्री प्रमोदजी शास्त्री दोसावालों के एवं पण्डित सुरेशचन्दजी टीकमगढ वालों के पिताश्री थे। आपकी स्मृति में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट को 501/- रुपये प्राप्त हुये हैं।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों ह्न यही भावना है।

श्री कान गुरु जाते रहे ?

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

जिसने बताया जगत को क्रमबद्ध है सब परिणमन।
परद्रव्य से हैं पृथक पर हर द्रव्य अपने में मगन।।
स्वाधीन है प्रत्येक जन स्वाधीन है प्रत्येक कन।
गुरु कान का संदेश धर लो कान जग के भव्यजन।।1।।
जो एक शुद्ध सदा अरूपी आत्मगुण गाते रहे।
पर्याय से भी भिन्न जो निज द्रव्य समझाते रहे।।
गुण-भेद से भी भिन्न जो निज आत्मा ध्याते रहे।
वे भव्य-पंकज-भास्कर श्री कान गुरु जाते रहे।।2।।
उनका बताया तत्त्व जग में आज भी जब गूँजता।
गुरु-गर्जनायुत वदन मन में आज भी जब घूमता।।
प्रत्येक दिन वे आज तक जब स्वप्न में आते रहे।
तब कौन कहता इस हृदय से कान गुरु जाते रहे।।3।।

ह्न साभार, वीतराग-विज्ञान, नवम्बर-1984 से

पं. चैनसुखदास स्मृति व्याख्यानमाला

जयपुर (राज.) : जैनदर्शन के मर्मज्ञ मनीषी पं. चैनसुखदास स्मृति व्याख्यानमाला के अन्तर्गत श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय जयपुर द्वारा दिनांक 25 जनवरी, 09 को कुन्दकुन्द सभागार भट्टारकजी की नसियां में विशेष व्याख्यान आयोजित हुये।

'सामाजिक सौहार्द्र समरसता एवं अनेकान्त दृष्टि' विषय पर मुख्य अतिथि प्रो. जुगलकिशोर मिश्र कुलपति जगद्गुरूरामानन्दाचार्य राज. संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर एवं मुख्यवक्ता डॉ. वीरसागरजी जैन जैनदर्शन विभागाध्यक्ष श्री लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली ने विस्तार से विषय विवेचन किया।

प्रकाशन तिथि : 28 मार्च 2009

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा**, डबल एम.ए.(जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन; इतिहास), नेट, एम.फिल (जैन दर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com **फैक्स :** (0141) 2704127